परमादरणीय
श्री युगल किशोर जी
मिश्र को सेवार्थ
"चञ्चल" जौनपुरी
१९।६।६८

'स्वर्णदी'

वरुणा साहित्य-संगम, भदोही, वाराणसी
की एक ऊर्मि।

'चंचल' जौनपुरी

प्रकाशक :
शारदा प्रकाशन
आँजनेय प्रकाशन गृह
सिम्हुई, रामपुर-जौनपुर
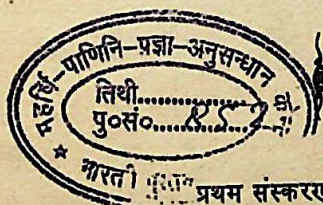
प्रथम संस्करण सन् १९७६

मूल्य ५ रु०

मुद्रक : विद्यामुद्रणस्थली, मदैनी, वाराणसी

स्वर्गीया
माँ सुरजा देवी की पुण्य
स्मृति में
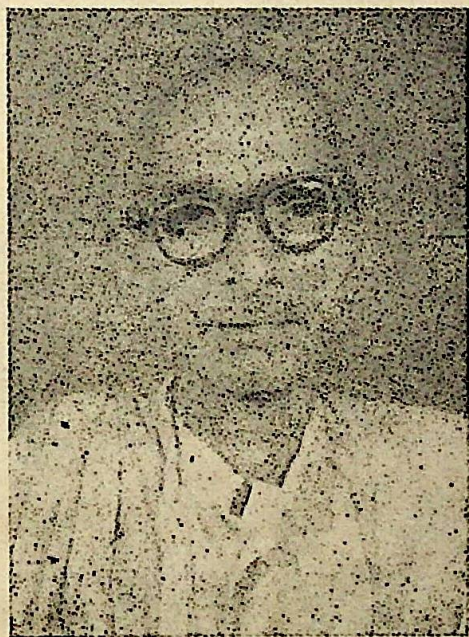
पूज्य पिता

श्री राजाराम जी

'स्वर्णश्री' जिनके पुण्यों का सुफल है।

श्रद्धेय

द्वारिकाप्रसाद तिवारी 'ब्रजनाथ' को

सतत् जागरूकता के प्रेरणा स्रोत

अर्पण

राम -- दूत, रघु -- श्रेष्ठ -- भक्त -- वर,

अंजनि -- सुत -- भूषण, हनुमान !

दिव्य 'स्वर्णदी' तुम्हे सर्मपित,

दो । सुबुद्धि - बल, ज्ञान - निधान !!

'चंचल' जौनपुरी

[सेमुही, रामपुर, जौनपुर]

(उ०प्र०)

सम्मति :-

इस धरातल में अनेक भाषाओं में अपनी २ योग्यता एवं भावना के अनुसार अनेक कवियों ने भिन्न २ विषयों पर कविताओं की रचना की है वर्तमान युग के कविता-विशेषज्ञ 'चंचल' जौनपुरी (शिवराम दास जी) ने मां सरस्वती की प्रेरणा से धरती बन्दना इत्यादि दश विषयों पर मुक्तक छन्द में कविता लिखी है।

कविता रोचकता पूर्ण शद्वावलियों में तात्विक विषयों से परिपूर्ण है, देखकर मुझे बड़ी प्रसन्नता हुई। मैं श्री हनुमंत लाल जी से प्रार्थना करता हूँ कि भगवत भागवत यश वर्णन की विशेष क्षमता एवं अभिरुचि प्रदान करें क्यो कि— "नयद्वचः चित्र पदं हरेर्यशो जगत्पवित्रं प्रगृणीत कर्हिचित् तद्वायसं तीर्थं मुषन्ति मानसा न यत्र हंसा निर मन्त्युषिक्षया'। (श्री मद्भागवत) तथा (राम चरितसर विनु अन्हवाए, सो श्रम जाय न कोटि उपाए) "मानस"

हरिनामदास वेदान्ती

श्री जानकी घाट

श्री अयोध्या जी

प्रतिवेदन :----

कविवरः श्री "चंचल" जी जौनपुरी के प्रस्तुत कविता-संग्रह "स्वर्णदी" की रचनाओं का मैंने अवलोकन कर लिया है। इस संग्रह में 'चंचल' जी की सर्व-श्रेष्ठ, किन्तु लम्बी-लम्बी, दस कवितायें संगृहीत हैं; जो वस्तुतः गेय हैं।

हिंदी-खड़ी बोली की प्रांजलता का ध्यान रखते हुये, दर्शन-जैसे शुष्क विषय पर सुन्दर-सरस साहित्यिक शैली में, इस प्रकार की रचनाऐं प्रस्तुत करना, वास्तव में—आज के कवियों के लिए असम्भव-सा हो गया है; किन्तु, 'चंचल' जी इसके अपवाद हैं! दस शीर्षको की कविताओं में विभाजित कवि का यह कविता-संग्रह, वास्तव में, उसके एक ही लक्ष्य-निबद्ध उत्तम दृष्टिकोण की एक सूत्रता के कारण, सर्ग बद्ध एक 'प्रबन्ध-काव्य'-सा बन बैठा है। इस प्रकार अपने मौलिक विचारों का निर्भीकतम सम्पादन 'चंचल' जी में ही देखने को मिला है। चंचल जी वास्तव में सुधार-वादी दृष्टिकोण के कवि हैं एवं उनका यह प्रथम काव्य-प्रयास अत्यन्त ही—श्लाघनीय है।

आपकी सफलता के लिये मेरी शुभ कामनाऐं
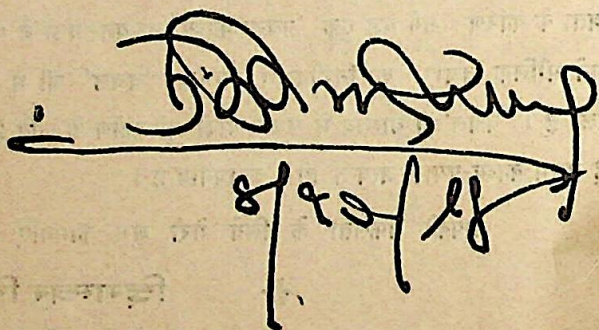
दिगम्बर मिश्र
नेवढ़िया--मेजा प्रयाग
८।६।७४

सम्मति --

'चंचल' जौनपुरी की स्वर्णंदी : के अन्तंगत संगृहीत रचनाएँ मैंनें देखी है; 'चंचल' जी मौलिक प्रतिभा के कवि हैं। उनकी दृष्टि में नवीनता है। उन्होंने इस संग्रह में जो दस रचनाएँ सम्मिलित की हैं, वे सभी गंभीर विचारों से पूर्ण हैं। उनमें जीवन की वास्तविकता का दर्शन मिलता है। छंद में प्रवाह है, भाषा में प्रांजलता। 'चंचल' जौनपुरी निः संदेह काव्य-क्षेत्र को अपनी रचनाओं से रस उर्वर कर जाँयगे।

यह उनका प्रथम ही काव्य-संग्रह है। मुझे आशा है भविष्य में वे और भी प्रौढ़ रचनाओं से भारती माँ का भण्डार भर सकेंगे। प्रस्तुत संग्रह भी अनेक दृष्टियों से अपनी विशेषता रखता है। उनके सफल कृतित्व के लिए मैं उन्हें हार्दिक बधाई देता हूँ। मेरी शुभ कामनाएँ उनके साथ हैं।

(सुमित्रा नंदन पंत)

४-१०-७४

सम्मति

श्री शिवप्रसाद वर्मा 'चंचल' मेरे जनपद के ही एक नवोदित कवि हैं। 'स्वर्णदी' उनकी रचनाओं का वह प्रथम संग्रह है जो प्रकाशित होने जा रहा है। उन्होंने अन्य रचनाएँ भी प्रणीत की हैं, मैं समय-समय पर व्यक्तिगत सम्पर्क गोष्ठियों एवं मंचों पर भी उनकी रचनाएँ कवि के व्यक्तित्व के निकट सम्पर्क में सुनता और रस लेता आ रहा हूँ। वे आज के उन कवियों से भिन्न हैं जो अपने में युग को न अभिव्यक्त कर युग में ही अपने को अभिव्यक्त करनें के मार्ग के सचेष्ट पथिक हैं। परिणामतः उनके काव्य में उनके निजत्व व्यक्तित्व और विचारों के प्रकाश से विच्छिन्न होकर पाठक उनके आरोपित व्यक्तित्व से टकराने की अपेक्षा, उनके आत्म-स्वरूप की उष्मता और गति-शीलता से सदैव जुड़ कर ही, उनकी तल्लीनताओं एवं वस्तु-मात्र-गत द्रवणों से एकाकार होता रहता है। विसंगति भय-संत्रास, व्यर्थता-वोध, अजनवीपन और खोखले विद्रोह की अपेक्षा 'चंचल' जी अपने परिवेश की मनोयात्रा करनें के पश्चात, उसके प्रति अपने सर्जक अनुभावक और समाधायक कवि से विमर्श और संवाद करते हैं; वे वातावरण और पर्यावरण को स्वयं ओढ़कर उसमें आत्म-गोपन की अपेक्षा, वातावरण और पर्यावरण को अपने कवित्व से आलोकित और व्यवस्थापित करने का रचनात्मक प्रयास करते हैं। कहें वे केवल गणक और प्रतिकृतिकार ही नहीं वस्तु-सत्ता और आत्म-सत्ता के बीच वस्थ सम्बन्धों अनुबन्धों के उद्घाटक और समायोजन को भी, अपना कवि-कर्त्तव्य समझते हैं।

यों वे सामाजिक यथार्थ, राष्ट्रीयता और समकालीनता से भी जुड़कर स्फुट रचनाएँ करते रहे हैं; किन्तु 'स्वर्णदी' में उन्होंने मानव-जीवन और मानवीय-सम्बन्ध मूल्यों के सांस्कृतिक स्तरों को आलोकित-अवलोकित करना चाहा है। फलतः, अपने सांस्कृतिक अतीत के विराट चिन्तन और वर्तमान के असमा-

योजन से भी जाने अनजाने जुड़ गये हैं और उनकी वर्तमान प्रतिक्रियाओं में उनके देश का अतीत चिंतन सहजतः रचनात्मक रूप से पुनः रचित तो हो ही उठा है, साथ ही, वह वर्तमान की संचेतनाओं और अपेक्षाओं के प्रति भी आत्म-समायोजित हो उठा है। इन रचनाओं में विचारों के चिंतन का भी एक स्वच्छ आलोक है। हम कह सकते हैं कि उपरितः अपनी स्फुटता में भी 'स्वर्णदी' भाव--विम्बों के माध्यम से चिन्तन की एक अन्तर्कथा है, जो सरिता की भांति स्वयं आगे वढ़कर अनेक संदर्भ-द्वीपों को समालिंगित करती हुई आगे वढ़ती गई है। अनजाने-अनचाहे अथवा अचेष्टित रूप से 'स्वर्णदी' की स्फुटता में एक अन्तर्प्रवन्धता की प्रतीति झलकने लगती है। गंभीर विचार चिंतन भावात्मक दीप्ति और भाषिक शब्द-संघटना की रचना के लिए 'चंचल' जी एक उज्ज्वल भविष्य के आशाप्रद कवि-पथिक हैं। हमें विश्वास है, वे आक्रोश और नकारात्मकता के पथ से युग के सार्थवाह में न खोकर, अन्तर्द्रष्टा और मानस--शिल्पिता के मार्ग को अपनाते हुए इसी प्रकार अपनी भारती को कुछ महत्वपूर्ण योगदान दे सकने में समर्थ सिद्ध होंगे। उनकी रचनाओं से हम और हमारा जनपद ही नहीं कभी साहित्य भी गौरवान्वित हो सकता है। मेरी सर्वतोभावेन मंगल-कामना उनके साथ है।

श्रीपाल सिंह क्षेम
अध्यक्ष
हिन्दी-विभाग, तिलकधारी
स्नातकोत्तर महा विद्यालय
जौनपुर

देवोत्थान-एकादशी
संवत् २०३२ विक्रमी

सम्मति

हजारी प्रसाद द्विवेदी

ए ३३ रवीन्द्रपुरी
वाराणसी
दूरभाष : ६७०१४

प्रियवर श्री 'चंचल' जी,

आप का 'स्वर्णंदी' कविता-संग्रह मैंने देख लिया है। इधर मेरी आँखों में थोड़ा सा कष्ट है, इसलिये विचार पूर्वक कुछ लिखने की स्थिति में नहीं हूँ। इसके छपने पर कुछ लिख सकूँगा। अभी मैं आप से इतना ही कह सकता हूँ कि आप की इस प्रथम रचना से ही आप की कवित्व शक्ति का परिचय मिल जाता है। कविताएँ मुझे अच्छी लगी हैं। परमात्मा से मेरी प्रार्थना है कि आप को स्वस्थ और प्रसन्न रखें।

शुभ कामना सहित,

आपका
हस्ताक्षर
हजारीप्रसाद द्विवेदी
दिनांक १६।३।७५

कविवर 'चंचल' की 'स्वर्णदी' में सँजोयी हुई रचनाएँ मैंने ध्यान से पढ़ीं। मानव के मानसिक चित्रों की भावात्मक अभिव्यक्तियों में 'चंचल' जी ने अपनी प्रतिभा को नियोजित करने में बड़ी सफलता प्राप्त की है। छंदो में न केवल विचार--गरिमा है, प्रत्युत प्रवाह भी है जिससे हृदय काव्य--सरिता में आन्दोलित होने लगता है।

'चंचल' जी का भविष्य उज्ज्वल है। यदि वे किसी खंड काव्य की रचना करें तो उन्हें और भी अधिक सफलता प्राप्त होगी।

मेरी शुभ कामनाएँ उनके साथ है।

(रामकुमार वर्मा)

साकेत इलाहाबाद-२
१२।६।७५

सम्मति
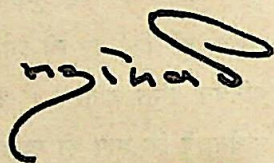
मैं ने 'स्वर्णदी' की कुछ कवितायें देखीं। कवि ने भावना के साथ विचारों का ऐसा समन्वय किया है जो हृदय और बुद्धि को समान रूप से प्रभावित करता है।

विश्वास है समय इनके भावों को अधिक गहराई तथा विचारों को अधिक व्यापकता देगा।

कवि के लिए मेरी शुभ कामनाएँ।

(महादेवी)

१८।१।८५

श्री चंचल जौनपुरी कृत 'स्वर्णदी' की कविताएं देखने का अवसर प्राप्त हुआ। कविताएं भावप्रधान और कल्पना- प्रचुर हैं। श्री चंचल उदीयमान कवि हैं। मैं इनकी रचना के प्रति अपनी हार्दिक शुभकामना प्रकट करता हूँ। आशा है भविष्य में श्री चंचल और उच्च कोटि की साहित्यिक सेवा कर सकेंगे।

क. दे. द्विवेदी
२५।१२।७४
प्रधानाचार्य
का. न. राजकीय महाविद्यालय
ज्ञानपुर, वाराणसी

श्री चंचल जौनपुरी की 'स्वर्णदी' की कुछ पंक्तियों का अवलोकन किया एवं कुछ चंचल जी द्वारा स्वयं सुना। चंचल जी द्वारा लिखी गई कविता उनके हृदय से निकली हुई प्रतीत होती। भाषा और भाव सुन्दर हैं। चंचल जी की यह प्रथम रचना है। मुझे विश्वास है कि चंचल जी हिन्दी काव्य में अपना अमूल्य योगदान देंगे। मैं 'स्वर्णदी' के लिये अपनी शुभकामनायें प्रगट करता हूँ।

फतेह बहादुर सिंह
२५।१२।७४
उपमंडलाधीश, ज्ञानपुर
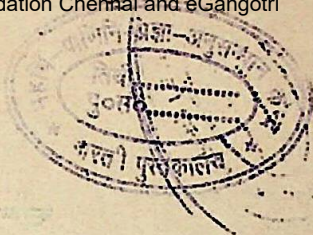
सम्मति

'स्वर्णदी' के रूप में 'चंचल' जौनपुरी का काव्य संग्रह उनका काव्य के प्रति नवोदित उत्साह एवं प्रेम का एक प्रतीक है। उनकी अधिकांश छंदों में भाषा सरल परन्तु गूढ़ भावों की प्रतिमास्वरूप है। कहीं कहीं पर भाषा की क्लिष्टता भी परिलक्षित होती है। उनके सोचने की शक्ति बड़ी ही मौलिक एवं अपने ढंग की अलग ही है।

मुझे हर्ष इस विषय का है कि वह कृषि स्नातक होकर साहित्य से परे रहकर उसकी ओर चल पड़े हैं। पथ बड़ा ही दुर्गम है पर उनके अध्यवसायी एवं लगनशील होने के कारण सुगम हो जायेगा; मुझे विश्वास है।

कृषि स्नातक होने के नाते यदि वह वैज्ञानिक कृषि को भी सरल काव्य के रूप में प्रस्तुत करके अन्नोत्पादन में अपना पूर्ण योगदान दे सकें तो यह प्रदेश के लिए उनकी सर्वोत्कृष्ट सेवा होगी। मैं अपनी हार्दिक शुभ कामनाएँ उन्हें सदैव के लिए अर्पित करता हूँ।

सरस्वती जी उन्हें सदैव अपने दुर्लभ आशीष का पात्र बनाए रहें, ऐसी मेरी विनती है।

बच्चन सिंह सेंगर
प्रोजेक्ट आफीसर, वाराणसी

दिनांक ५।४।७६

✻

सम्मति

प्रस्तुत 'स्वर्णदी' काव्य में संकलित, कविताएं जो जीवन के विभिन्न पहलुओं पर आधारित हैं परम भावुक तथा हृदयस्पर्शी हैं। श्री चंचल ने जो सजीव चित्रण नारी, नर, काल, दुःख, धर्म, पाप, क्रोध एवं मन्थरा आदि विषयों को लेकर किया है वह निःसन्देह अत्यन्त ही शिक्षाप्रद, जीवनोपयोगी एवं सारगर्भित है। श्री 'चंचल' के इस काव्य-संग्रह को पढ़ने एवं सुनने से ऐसा प्रतीत होता है कि श्री चंचल एक प्रतिभाशाली एवं मर्मज्ञ कलाकार कवि हैं। इनका आध्यात्मिक एवं दार्शनिक दृष्टिकोण अत्यन्त ही सराहनीय है। इनकी परिमार्जित शैली, ओज-पूर्ण भाषा, रसों तथा अलंकारों का समुचित प्रयोग इनकी प्रखरता तथा काव्यगत परिपक्वताका परिचायक है। श्री चंचल राजकीय कर्मचारी होते हुए भी अपने व्यस्त जीवन - काल में जो काव्य रचना किए हैं मैं इन्हें इस प्रयास एवं परिश्रम के लिए हार्दिक बधाई देता हूँ।

श्री 'चंचल' का यह प्रथम संकलन है, यह इनके जीवन में उत्प्रेरक सिद्ध हो यही ईश्वर से प्रार्थना है। मैं इनके उज्ज्वल भविष्य की कामना करता हूँ।

शुभ कामनाओं सहित

डा० शशिभूषण त्रिपाठी
एम० एस-सी० एजी० पी-एच० डी० पी० ए० एस०
जिला कृषि अधिकारी, वाराणसी

भूमिका

'चञ्चल' एक उदीयमान कवि हैं। 'स्वर्णदी' की अभ्युक्तियों तथा अभिव्यंजनाओं के संचयन से स्पष्ट आभास मिलता है कि कवि सामाजिक विगर्हणा, उपेक्षा एवं वितृष्णा, राजनैतिक प्रवंचना तथा विडम्बना से पृथक हो, अन्तर्मुखी हो उठा है। वाह्य संपीड़न, प्रलोभन तथा काल कें संक्रमण से वहुत दूर मानवीय संचेतनाओं तथा मनोवृत्तियों में तल्लीन हो नवीन परिकल्पनाओं और उद्भावनाओं को जन्म देना चाहता है। अतः राष्ट्रीयता सामाजिकता तथा राजनैतिक उथल-पुथल से उसकी रचनायें सर्वथा अछूती हैं तथा प्रकृति के प्रति भी उसका कोई सम्मोह नहीं है।

वास्तव में मानव-हृदय ही साहित्य की पवित्र-तीर्थ-स्थली है जहाँ से अनन्त भाव धारायें विविध रूप से अनन्त-शक्ति लेकर प्रवाहित होती हैं जिनके अवरोध का सृष्टि में कोई विकल्प नहीं। उनका भाव-चित्रण ही कलाकार की अमरता है तथा है साहित्य-साधकों का अभिनव-पाथेय। यही नूतन ऊर्जा एवं साहित्यिक संचेतना कर्ण का अयाचित वरदान है तथा है साहित्य जगत का मूल-आदर्श। 'चञ्चल' का कवि इसी नूतन अनुसंधान में विकल प्रतीत होता है। हृदय अवस्थित-भावनाओं को शव्दों में वाँध कर अरूप को रूप देने, अकथ्य को ध्वनन् करने का प्रयास सा करता हुआ प्रतीत होता है। इसका मूल्यांकन पाठक स्वयं निम्न पंक्तियों के आधार पर कर सकते हैं।

क्रोध का क्या स्वरूप होता है? इसकी अद्भुत विलक्षणता क्या है? चरमावस्था में मनुष्य की कैसी निरीह दशा हो जाती है? आदि का चित्रण मार्मिक ढंग से किया है—

यह मानस के विस्तृत नभ में,
प्रलय काल के रवि सा जलता।
हृदय सिन्धु की सुधा सोखकर
सदा गरल की वर्षा करता॥
पल भर में जो प्रलय मचा दे,
यह शिव का तीसरा नयन है।
जड़ता शैशव, हिंसा यौवन
और जरा अनुताप सघन है।

क्रोध का स्वरूप शंकर के तृतीय नेत्र-सदृश भयावह तथा प्रलय-काल के रवि-सा दुर्बोध होता है। मानव की शैशव युवा एवं जरा अवस्था जैसी होती है वैसी ही क्रोध की दशा भी होती है। विभिन्न अवस्थाओं में क्रोध का क्या स्वरूप होता है, कवि ने अत्यंत प्रभावशाली ढंग से प्रस्तुत किया है।

क्रोध की तीनों दशाओं को पार करने के पश्चात् मनुष्य की अन्तिम स्थिति क्या होती है, कवि ने उसका स्पष्ट रूप अंकित कर दिया है।

जब तक इसका शासन चलता,
प्रज्ञा का प्रकाश ढह जाता
और मनुज के अन्तस्तल में
केवल तम ही तम रह जाता।

और अन्तिम परिणाम क्या होता है ?

इस भुजंग के फूत्कार से,
स्वयं भाग जाती धृति मृदुता।
धारण करते ही मर जाता,
इस आयुध का चालनकर्ता।

क्रोध के अन्तिम-चरण में स्वयं मनुष्य का अस्तित्व ही नष्ट हो जाता है अर्थात् उसकी मनुष्यता का अन्त हो जाता है।

इसी प्रकार कवि ने दुःख, धर्म, दान, उपकार, क्षमा, दया, त्याग और अहिंसा आदि के स्वरूप-निरूपण का प्रयास किया है।

मानव-समाज में नर भी हैं नारी भी। कवि अपनी कथावस्तु का समायोजन इसी युग्म के माध्यम से करता है तथा इनकी विलक्षणता, अद्‌भुत प्रतिभा, असाधारण क्रिया-कलाप तथा नवीन संकल्पों-विकल्पों के परिप्रेक्ष्य में रसोद्रेक कराकर अलौकिक आनन्द की अनुभूति कराता है। परन्तु 'चञ्चल' का कवि एक समग्र विराट रूप लेकर चल पड़ा है। उसने 'नर' और 'नारी' के मूल उपादानों, विशेषताओं, विलक्षणताओं तथा चिरंतन संचेतनाओं की निर्विशेष अभिव्यक्ति को लक्ष्य बनाया है। शाश्वत नैसर्गिक एव स्वाभाविक गुणों की विवेचना तथा अभिव्यंजना प्रस्तुत करने का अभिनव-मौलिक प्रयास किया है। उसने किसी सामाजिक, राजनैतिक, आध्यात्मिक एवं अन्य आधिभौतिक वातावरण एवं पर्यावरण में आवेष्ठित करके उनका निरूपण करने का प्रयास नहीं किया है वरन् उनकी मूल भूत अन्तर्वृत्तियों,

परिकल्पनाओं और उद्भावनाओं का समन्वित रूप चित्रित करने का प्रयास किया है।

नारी के संदर्भ में—

जीवन के प्यासे मरुथल में,
सुधा-सार सरसाती हो।
ज्योति कलश में विमल भास बन
अंधकार पी जाती हो।

लज्जा से देवी बनती हो
ममता ही होता जीवन।
व्रीड़ा में यदि क्रीड़ा करती
तो मरु भी होता मधुवन॥

व्रत सहिष्णुता सदा तुम्हारा।
पथ प्रदर्शिका नागर की।
तुम निसर्ग सेवा की प्रतिमा
स्वर्ग—ज्योति भव सागर की॥

स्नेह बीज—अक्षय—वट बनकर,
तुमने रची विश्व काया।
तारे अम्बर की कविता हैं
अवनि—काव्य हो तुम जाया॥

कवि ने नारी-गरिमा का जो गौरव-गान प्रस्तुत किया है इसमें उसकी मौलिक प्रतिभा तथा काव्य-संरचना की अलौकिक शक्ति का स्पष्ट आभास मिलता है। "स्नेह-बीज-अक्षय-वट" की परिकल्पना सवर्था मौलिक तथा चमत्कार पूर्ण है।

'स्वर्णदी' में भाव-विचार संगुम्फन गंभीर संचेतना बौद्धिक एवं तार्किक विवेचन, बिम्ब ग्रहण विराट् चिन्तन तो मिलता ही है साथ ही भाषा का सार्थक समायोजन, प्राञ्जलता, प्रवाह तथा संग्राहकता भी स्वाभाविक रूप में विद्यमान है। उपमा, रूपक तथा उत्प्रेक्षा आदि का स्वाभाविक समन्वय भी हो गया है जिससे कविता में एक शक्ति तथा प्रभविष्णुता आ गई है।

जैसे—(नारी)

> सुंदरता तो महा शक्ति है
> आयुध है पावन मुसकान।
> किन्तु भावना-चक्रव्यूह में
> नर अभिमन्यु सदृश बलिदान।

जीवन की विषमताओं में पला हुआ कवि, झंझावातों से पीड़ित एवं प्रताड़ित आशा की रज्जु पकड़े चल रहा है। उसका दृढ़ एवं निश्चित विश्वास है कि एक दिन सभी नतमस्तक होंगे और वह संसार को नवीन जीवित ज्योति दे जायगा क्योंकि उसका विश्वास है—

> घन-माला-तूफानों में ही
> नभ में इन्द्रचाप सजता है
> महा प्रलय की चिता-भस्म पर
> नव युग का नूपुर बजता है

तारा लाल श्रीवास्तव
हिन्दी विभागाध्यक्ष
ने० इ० का० भदोही
वाराणसी

दो शब्द

प्रस्तुत काव्य-संग्रह 'स्वर्णदी' को पाठकों के समक्ष प्रस्तुत करते हुये मुझे अपार हर्ष एवं संकोच का समन्वित अनुभव हो रहा है। हर्ष का अनुभव तो इसलिये हो रहा है कि इस संग्रह के माध्यम से उनके समक्ष मैं अपने टूटे-फूटे विचारों को रख सकूँगा किन्तु साथ ही संकुचित भी हो रहा हूँ क्योंकि इसमें वह भावोत्कर्ष तथा सरसता नहीं है जिसकी वे अपेक्षा करेंगे। जहाँ अनेक रस सिद्ध प्राकृत कवियों की सरस एवं उत्कृष्ट रचनाएँ काव्य-प्रेमियों के हृदय में रस की धारा-प्रवाहित कर रहीं हैं; वहाँ काव्य-कलाहीन मुझ अल्पज्ञ की क्या गणना है! मेरी शुष्क तथा भावहीन कविताओं का क्या महत्व है? मैं अपने इन भाषानिवद्ध भावों एवं विचारों को जो काव्य की संज्ञा दे देता हूँ उसे भी मैं अपना दुस्साहस ही समझता हूँ क्योंकि 'वाक्यं रसात्मकं काव्यम्' के अनुसार वही वाक्य काव्य की कोटि में आता है जो सरस हो—जिससे रस की धारा प्रवाहित हो रही हो। वही वास्तव में कवि है जिसकी वाणी पाठकों के अन्तराल में रसोद्रेक कर सके। इस काव्य-परिभाषा की कसौटी पर कसने पर तो मेरी प्रस्तुत रचना खरी नहीं उतरती-वह काव्य कहलाने की अधिकारिणी नहीं वनती। फिर भी कवि वनने की प्रवल उमंग में मैंने अपने इस रचना-संग्रह को काव्य-संग्रह की संज्ञा देने की धृष्टता कर ही दी। मैं आशा करता हूँ कि पाठक मेरी इस धृष्टता के लिये मुझे क्षमा करेंगे। प्रस्तुत संग्रह में पाठकों को रस-धारा न सही, रस का एक कण भी कहीं मिल गया तो मैं अपने परिश्रम को सफल समझूँगा।

समय का वात्याचक्र इतना वलशाली होता है कि इसके प्रवल वेग के सामने किसी का टिकना अत्यन्त कठिन होता है। मुझे सन् १९६८ की वसन्त-पंचमी की पुण्य यामिनी विस्मृत नहीं होती; उस समय मैं देवरिया जनपदान्तर्गत विकास क्षेत्र भाटपार रानी में भिंगारी नामक पावन स्थली पर सहायक कृषि निरीक्षक के पद पर कार्यरत था। इसी तिथि को हमारे दो परम् मित्र श्री गोरखनाथ सिंह एवं श्री हरी सिंह जो कि खामपार के निवासी थे और भिंगारी के सन्निकट श्री राम-जानकी हायर सेकेंडरी स्कूल में प्राध्यापक थे मुझे खामपार में सम्पादित होने वाले वसन्त-महोत्सव में ले गये। मैं उन मित्रप्रवरों के साथ उस महोत्सव में सम्मिलित हुआ। महोत्सव के समापन के पूर्व कवि-गोष्ठी का आयोजन किया गया। कवि-

गोष्ठी में क्षेत्रीय कवियों ने काव्य पाठ किया। इस शुभ अवसर पर 'समोसा' नाम से सुप्रसिद्ध एक कवि महोदय ने 'बादल बनाम नेता' पर आधारित हास्य-व्यंग्य से ओतप्रोत अपनी कविता पढ़ी। इसी प्रकार अन्य कवियों ने भी अपनी रचनाएँ प्रस्तुत की। कवि-गोष्ठी-समापनोपरांत मैं भिगारी लौट आया, किंतु उस पुण्य निशा में मुझे निद्रा नहीं आयी और मेरे हृदय-सिंधु में कवि बनने के लिये प्रबल चक्रवात उठने लगा। मैं 'समोसा' जी की कविता से विशेष प्रभावित था, इसलिये प्रारम्भ में मैं भी टूटे-फूटे शब्दों में हास्य-व्यंग्य पर आधारित कविता लिखने लगा। कुछ समयोपरांत मेरा स्थानान्तरण विकास खण्ड गौरीबाजारान्तर्गत महुआडीह नामक स्थान पर हुआ। उस समय मैं अपने सहकर्मी श्री बंधू सिंह सहायक कृषि निरीक्षक (बैतालपुर) के सम्पर्क में आया।

भाई बंधू सिंह बड़े ही स्नेही, सम्पर्कशील एवं व्यवहारकुशल व्यक्ति हैं। उन्होंने मेरे टूटे-फूटे भावों को सम्मान दिया और कविता लिखने के लिये मेरा उत्साह-वर्द्धन करते रहे। मैं उनका चिर ऋणी हूँ।

समय के चक्र ने मुझे भी नहीं छोड़ा और मेरा स्थानान्तरण वाराणसी जनपदान्तर्गत विकास खण्ड चहनियाँ और बाद में विकास खण्ड भदोही में सहायक कृषि निरीक्षक के पद पर हुआ। यहाँ पहुँचते ही मेरे अन्तराल में सुसुप्तावस्था में पड़े हुये कवि के विचार जागरण के लिये अंगड़ाई लेने लगे। इसका सम्पूर्ण श्रेय भाई जयप्रकाश मिश्र मिलिंद को है। भदोही आगमन पर श्री मिलिन्द जी ने मेरा स्वागत किया और २६ जनवरी १९७१ की पुण्य तिथि को ये महोदय मुझे साहित्यिक संस्था 'वरुणा साहित्य-संगम' की गोष्ठी में ले गये। उक्त गोष्ठी भदोही नगर के प्रतिष्ठित डाक्टर श्री अमरनाथ जी दुबे (एम. बी. बी. एस.) के आवास पर आयोजित थी। यद्यपि उस समय मैं साहित्य के क्षेत्र में अनुभवहीन तथा नव प्रयासी था फिर भी उपस्थित कवियों एवं स्वयं डाक्टर साहब ने मेरा उत्साहवर्द्धन किया। इसी स्थल पर हमारी भेंट पण्डित राजनाथ जी मिश्र एम० ए० बी० एड० 'मराल', श्री द्वारिकाप्रसाद त्रिपाठी 'व्रजनाथ' जमालापुरी, डा० राम शिरोमणि 'होरिल', मूलनराम जी मिश्र, बी० एस० सी०, विजयशंकर लाल श्रीवास्तव एम० ए०, बी० एड० प्रवक्ता (नेशनल कालेज, भदोही), श्री रमाशंकर मिश्र, श्याम पाण्डे, 'साकिब' भदोहवी, 'आलोक' जीतनारायण 'कमल', हरींद्र उपाध्याय, कैलाशनाथ गुप्त इत्यादि कवियों एवं शुभचिन्तकों से हुई।

श्री 'मराल' जी ने मुझे हिंदी जगत् में लाने के लिये अपने व्यस्त जीवन का स्वर्णिम क्षण प्रदान किया। श्री 'मराल' जी बड़े ही स्नेही, उपकारी, उदार चेता, विचारक एवं भावुक कवि हैं। वे ही 'स्वर्णंदी' के प्राण स्रोत हैं। मैं नहीं तो मेरा हृदय स्पष्ट साक्षी है कि श्री 'मराल' जी ही 'स्वर्णंदी' के वास्तविक प्रणेता हैं, मैं तो बस निमित्त मात्र हूँ।

डा० श्री अमरनाथ जी दुबे ने 'स्वर्णंदी' लता को सींचा है तो भाई विजय शंकर लाल जी, श्री मिलिंद जी, श्री मूलन राम जी, श्री रमाशंकर मिश्र जी एवं श्री श्याम पाण्डे ने इसे सँवारा है।

मैं अपने परम् प्रिय पड़ोसी श्री रघुनाथ दास जी गुप्त डवल एम. ए. एवं श्री महेन्द्र नाथ पाण्डेय का हृदय से आभारी हूँ। श्री गुप्त जी एवं श्री पाण्डेय जी समय-समय पर उत्तम भावों के सिंदूर द्वारा 'स्वर्णंदी' की माँग भरते रहे।

मैं श्री वदन सिंह प्रयोजना अधिकारी (कृषि) वाराणसी, वी० पी० पाण्डेय जि० कृ० अ० मिरजापुर, यस० एन० सिंह कृ० र अ० जौनपुर, ज्योतिस्वरूप श्री वास्तव क्षे० वि० अ० भदोही, गुलाव सिंह प० चि० भदोही, श्री राजनारायण सिंह, श्री एस. एन. सिंह श्री शिव वोध राय, श्री आत्मा-चरण सिंह अतिरिक्त जिला कृषि अधिकारी, श्री विजय शकर तिवारी तत्कालीन सहायक तम्वाकू निरीक्षक, श्री राम भवन मिश्र स० वि० अ० (सांख्यिकी), श्री जी० डी० त्रिपाठी स०वि०अ० (अल्प सिंचाई), श्री लालता प्रसाद यादव स०वि०अ० (कृषि), श्री राजनारायण सिंह स०वि०अ० (कृषि), श्री देवेन्द्रकुमार कनिष्ठ कृषि रक्षा सहायक, श्री गोरखनाथ शुक्ल, श्री रामलखन प्रजापति, श्री हृदय राम पाण्डेय, वैजनाथ सिंह स० कृ० नि०, श्री दीनानाथ श्रीवास्तव क्षेत्र प्रदर्शक भारतीय उर्वरक निगम, उदयशंकर चौवे स्थ० लि० (कृषि कार्यालय वाराणसी), श्री जवाहर लाल गुप्त व० स्टे० बै० गोपीगंज, श्री हरिहर सिंह एम० ए० उ० प्रधानाचार्य, श्री वंशीलाल इ० मि० कालेज, सेमुही रामपुर, जौनपुर, को हृदय से आभार प्रगट करता हूँ जिन्होंने 'स्वर्णंदी' को सम्मान दिया।

मेरे परम पूज्य पिता श्री राजाराम धर्म परायण एवं उदारचेता व्यक्ति हैं जो नित्य गीता एवं रामायण का पाठ करते हैं, 'स्वर्णंदी' उन्हीं के पुण्यों का फल है।

मैं अपनी धर्मपत्नी श्रीमती शारदा देवी के असीम सहयोग को भी कभी भूल नहीं सकता। मैं एक अल्प वेतन भोगी कर्मचारी हूँ। मेरे सीमित आय के द्वारा ही उन्होंने गार्हस्थ्य जीवन को सुव्यवस्थित वनाये रखा उन्होंने मेरे साथ जीवन के

सुखद तथा दुखद क्षणों को हंसते हुए वड़े ही सन्तोष के साथ व्यतीत किया। इस वात के लिये वे सदैव सतर्क रहीं कि उनकी कोई भी भौतिक सुखेच्छा मेरी काव्य - रचना में वाधा प्रस्तुत न कर सके। वास्तव में उन्होंने एक धर्म पत्नी की भूमिका का भली भाँति निर्वाह करते हुये मेरी स्वर्णदी की रचना में अपना सम्पूर्ण सहयोग प्रदान किया।

मैं स्वर्णदी के प्रकाशन में अमूल्य सहयोग प्रदान करने के लिये श्री राजाराम जी गुप्त एम. एस. सी. भदोही श्री रमेश चंद्र गुप्त भदोही, देवेन्द्र कुमार जैन जी० एफ० डी० भदोही, राधेश्याम गुप्त, हरिचन्द्र गुप्त, श्री गिरिजाशरण उपाध्याय, श्री रामनिरंजन यादव एम. ए. श्री रमाशंकर तिवारी एम. ए., श्री राजनरायन यादव एम. ए. श्री रामसजीवन पाण्डेय, श्री राजनाथ मिश्र, श्री राम भजन वर्मा, डा० रामनाथ गुप्त पारस नाथ सिंह, श्री दाता राम तिवारी एम. ए. एवं श्री राजमणि मिश्र अवध नारायण उपाध्याय पो० मा०, समरजीत यादव, एवं त्रिलोकी नाथ वर्नवाल रामपुर को हृदय से आभार प्रकट करता हूं।

मैं अपने पूज्य गुरु श्री तारा लाल जी श्रीवास्तव हिंदी विभागाध्यक्ष नें० इ० का० भदोही का चिर ऋणी हूँ। समय-समय पर उनसे सत्प्रेरणा एवं मार्ग दर्शन के रूप में मुझे उनका आशीर्वाद प्राप्त होता रहा। उनसे मुझे जो सहयोग प्राप्त हुये उन्हे शब्दों के माध्यम से व्यक्त नहीं किया सकता। आप बड़े ही भावुक तथा कवि-हृदय व्यक्ति हैं। यह कहना अति रंजना न होगी कि शिक्षा काल में ही उन्होने मेरे हृदय में कवित्व का अकुरण कर दिया था।

अन्त में मैं अपने उन समस्त गुरुजनों, मित्रों, हितैपियों तथा सहयोगियों का हृदय से अभारी हूँ जिनके आशीर्वाद एवं सत्प्रेरणा के परिणाम स्वरूप मैं 'स्वर्णदी' को प्रकाशित कराने की स्थिति को प्राप्त कर सका हूँ।

शिव प्रसाद वर्मा
'चंचल' जौनपुरी
सेमुही, रामपुर
जौनपुर
१८।५।७६

संयोजक
"वरुणा साहित्य-संगम"
भदोही, वाराणसी

'निराला-साहित्य संगम'
सेमुही, रामपुर
जौनपुर

विषय सूची

धरती-वंदना

आदि शक्ति की दिव्य-मूर्ति, हे !
जय संयमनी, तुम्हें प्रणाम !
शत -- शत -- गंगा - हृदय -- धारिणी,
जय, माँ धरणी ! तुम्हें प्रणाम !!

अमर दीप के प्रभा-पुंज से,—
विभा चली साकार कहाँ ?
स्वर्ग-द्वीप की 'नीलम' ! बोलो,
आभा का आधार कहाँ ?

शरद्-चंद्र की 'पूनम' ! बोलो,
अम्बर का व्यापार कहाँ ?
शान्ति--सुमन की बंद कली में,
मधुकर का गुंजार कहाँ ?

सहस्र चंद्र की चारु चाँदनी,
जय संयमनी, तुम्हें प्रणाम !
शत -- शत -- गंगा -- हृदय - धारिणी,
जय, माँ धरणी ! तुम्हें प्रणाम !!

मधुरित मधुवन के आँगन में,
यौवन का उद्गार कहाँ ?
बंधन में, चंदन बन देखो !
नंदन का शृंगार कहाँ ?

दिनकर के स्यंदन से झर कर,
कण -- कण का उद्धार कहाँ ?
युग -- युगान्त के प्रलय - अंक में,
ओम्कार -- अवतार कहाँ ?

जय ऋषियों की तपस्थली, जय !—
त्रिकालज्ञ मुनियों का धाम !
शत -- शत -- गंगा -- हृदय -- धारिणी,
जय, माँ धरणी ! तुम्हें प्रणाम !!

मोक्ष -- कुंज की पुण्य भूमि पर,
देव -- नदी की अगणित धार ।
शान्ति -- कुंज की मंजु वेलि पर,
मधुमय मलय -- गंधि -- विस्तार ।

अंतरिक्ष के रजत -- पटल पर,
पलक -- बीच तारक उज्ज्वल ।
अगणित हीरों का गर्भस्थल,
भ्रमित सरित् का कूल विमल ।

विश्व -- वल्लभा हृदयहारिणी
जय संयमनी, तुम्हें प्रणाम !
शत -- शत -- गंगा - हृदय -- धारिणी,
जय, माँ धरणी ! तुम्हें प्रणाम !!

जड़ -- चेतन से नील गगन तक,
उच्छ्वासों का भी उच्छ्वास ।
अनुकम्पा के तृषित अधर पर,
अमृत घोल -- सा मधुमय हास ।

मानव के कलुषित कपोल पर,
अरुणोदय का अरुणिम भास !
चिर संस्मृति के विस्मित -- थल पर,
वसुंधरा: शाश्वत विश्वास !

निलय -- भासिनी, हृदय वासिनी,
जय संयमनी, तुम्हें प्रणाम !
शत -- शत -- गंगा -- हृदय -- धारिणी,
जय, माँ धरणी ! तुम्हें प्रणाम !!

सहस्र कोटि ब्रह्मांड -- धमनिका,
मुख पर शान्त -- स्निग्ध घूंघट ।
संवेदन -- पल्लवित उरस्थल,
गमक रहा तन पर दुखपट ।

अमर लोक की अमर अक्षरी,
ले जाती भर जीवन -- घट ।
महक उठी सौरभ की मालिनि,
आत्म -- बीज पा, अक्षय -- वट ।

शत -- शत -- ब्रह्मा -- सतत् -- पालिनी,
जय संयमनी, तुम्हें प्रणाम !
शत -- शत -- गंगा -- हृदय -- धारिणी,
जय, माँ धरणी ! तुम्हें प्रणाम !

निश्छल, निर्मल, महिमा -- मण्डित,
धवल कीर्ति उज्ज्वल शृङ्गार !
स्वयं विष्णु -- सम भासित होकर,
पहनाती नित हीरक -- हार !

ज्योतित रवियों से ललाट तव,
शस्य -- श्यामला, शाश्वत प्यार !
स्वयं शाश्वती, गरल पान कर,
पिला रही शाश्वत् मधुसार !

सहस स्वर्ग -- महिमा -- विलासिनी,
जय संयमनी, तुम्हें प्रणाम !
शत -- शत -- गंगा -- हृदय -- धारिणी,
जय, माँ धरणी ! तुम्हें प्रणाम !!

नारी

जय, जग-जननी ! जगत्-व्यापिनी,
ज्योतिर्मयि जीवन - छाया !
तारे अम्बर की कविता हैं,
अवनि - काव्य हो तुम, जाया !!

सोम सरिस यदि कलित कलेवर,
गर्व - कलंक लगाती हो।
किंतु, सिंधु गुण का यदि लहरे,
सिंधु - सुता कहलाती हो।

जीवन के प्यासे मरु - थल में,
सुधा - सार सरसाती हो।
ज्योति - कलश में विमल भास बन,
अंधकार पी जाती हो।

शत शत वंदन, युग - अभिनन्दन !
महा प्रकृति - उज्ज्वल माया !
तारे अम्बर की कविता हैं,
अवनि - काव्य हो तुम, जाया !!

लज्जा से देवी बनती हो,
ममता ही होता जीवन ।
व्रीड़ा में यदि क्रीड़ा करती,
तो मरु भी होता मधुवन ।

लज्जा ही श्रृंगार तुम्हारा
पति प्रांगण होता नन्दन ।
पाणि ग्राह के पथ की रज भी,
तीर्थस्थल का है चंदन ।

व्रीडानत के उटज द्वार पर,
स्वर्गिक सुमनों को पाया !
तारे अम्बर की कविता हैं,
अवनि - काव्य हो तुम, जाया !!

व्रत सहिष्णुता सदा तुम्हारा,
पथ - प्रदर्शिका नागर की ।
तुम निसर्ग : सेवा की प्रतिमा
स्वर्ग - ज्योति भव - सागर की ।

भेदों में तुम महा भेद - सी,
आदि - अंत कल्पान्तर की ।
विश्व - हृदय की महा धमनिका,
अर्धांगिनि रचनाकर की ।

स्नेह - बीज - अक्षयवट बन कर,
तुमने रची विश्व - काया !
तारे अम्बर की कविता हैं,
अवनि - काव्य हो तुम, जाया !!

नारी पर ही अवलम्बित है,
दृष्यमान् यह सृष्टि - विकास;
जहाँ समादर होता इनका,—
करें देवता तहाँ निवास।

रे, मानव! तुम कितने निष्ठुर,
कितनी निष्ठुर तेरी प्यास।
क्रीड़ा करते जिस सुअंक में
विखराते मोती - सा हास। —

उसके ही मानस - प्रसून को,
नोच - नोच कर विखराया!
तारे अम्बर की कविता हैं,
अवनि - काव्य हो तुम, जाया!!

नारी तो निज अभ्यन्तर में,
नर को देती स्वर्गिक - मान।
पर, नारी की रूप - शिखा पर;
दग्ध हो रही मनु - संतान?

सुंदरता तो महा शक्ति है,
आयुध है पावन मुसकान।
किंतु, भावना - चक्र - व्यूह में,
नर, अभिमन्यु - सदृश वलिदान।

विहँस उठी अधरों पर लाली
ऊषा ने जब माँग भरी!
तारे अम्बर की कविता हैं,
अवनि - काव्य युग की नारी!!

घृणा करो वासना - पंक से,
किंतु, न नलिनी नारी से ;
तजो कामना कामुकता की,
सुरभित हो फुलवारी से ।

यही वासना क्रूर कालिनी,
सजी कलुषता - सारी से;
छलती है कोमल सुमनों को,
भ्रमरी केशर - क्यारी से ।

कोटि कल्प से भ्रमावर्त में,
जिसने जग को भटकाया !
तारे अम्बर की कविता हैं,
अवनि काव्य हो तुम, जाया !!

व्यथा - उदधि भी पी सकती हो
पथ शूलों से हो अवरुद्ध !
प्रणय नहीं अंगीकृत करती —
अभ्यन्तर - अभिलाष - विरुद्ध ?

नारी के गौरव से खेले,
मनु का वंशज परम् प्रबुद्ध ;
फटता है फिर वितल - पटल भी,
बन, कौंधे यदि विद्युत - क्रुद्ध !

जब - जब हृदय - सिंधु उफनाया,
रौद्र - रूप तब दर्शाया !
तारे अम्बर की कविता हैं,
अवनि - काव्य हो तुम, जाया !!

मात्र प्रशंसा से नारी का,
मन पाषाण द्रवित होता ;
पावन प्रणय याचना - सम्मुख,
श्रद्धा - अमृत स्रवित होता ।

जीवन तो शैशव अमर्त्य का,
प्रीति -- अंक में नित सोता ।
ममता का यदि क्षीर पिया तो,
निश्चित ही सुरभित होता ।

भ्रमित मनुज के जीवन - पथ पर,
नारी ही दीपक -- काया !
तारे अम्बर की कविता हैं,
अवनि - काव्य हो तुम, जाया ॥

ईश्वर के पश्चात सभी नर,
अति आभारी दारा के ।
प्रथम - प्रथम जीवन के हित में,
जीने - योग्य सहारा के ।

हो जाता ईश्वर भी निष्क्रिय,
अर्भक को उदरस्थ करा ।
देखो, तो नारी की ममता,
सुधा पिलाती हृदय भरा ।

होम - कुण्ड में आहुति बन कर,
अमृत व्योम से बरसाया !
तारे अम्बर की कविता हैं,
अवनि - काव्य हो तुम, जाया !!

किसी देश की अवनति – उन्नति,
नारी पर ही निर्धारित ;
काया पलट सके पृथ्वी की,—
मात्र इसी पर आधारित ।

व्यान — पटल पर ब्रह्म – रूप भी,
केवल इससे परिपालित ।
आदि शक्ति यह, महा शक्ति यह,
इससे सब कुछ संचालित ।

निलय – योषिता, प्रणय – पोषिता,
महा प्रकृति – कोमल काया !
तारे अम्बर की कविता हैं,
अवनि – काव्य हो तुम जाया !!

जो नारी – नर शुभ्र हृदय के,
नरता के जो श्रद्धावान् ।
ज्योतिर्मय ललाट में उनके
दिनकर का होता अवसान ।

कुत्सित नर तो विषधर होता,
भले न करता हो विष – पान ।
कहीं कुत्सिता हुई योषिता,
दुष्चरिता है नरक – समान ।

उरस्थली में मणि लें भी नर,
व्याल काल – सम कहलाया !
तारे अम्बर की कविता हैं,
अवनि – काव्य हो तुम, जाय !!

करुणा का सौरभ बिखेरता,
नारी के जीवन का फूल ।
मानव की अतिशय निष्ठुरता,
नारी – मार्दव के प्रतिकूल ।

नर के शीतल आँगन में है,
नारी विकसित पाटल – फूल;
सुरभि -- दान देती जो सबको,—
स्वयं हृदय पर झेले शूल ।

प्रबल प्रभंजन में भी, कब वह—
जन -- मनरंजन मुरझाया !
तारे अम्बर की कविता हैं,
अवनि -- काव्य हो तुम, जाया !!

प्रेम – परक प्रतिशोध क्षणों में,
वंचित नारी, नर से क्रूर ।
मिलकर भिन्न प्रकृति : दो प्राणी,—
शक्ति – स्रोत बनते भरपूर ।

स्वप्नों के स्नेहिल उपवन में,
भ्रमरी बन करती मधु -- चय ।
नियति -- नटी की अमर वल्लरी,
निश्छल, विमल, अभय, निर्भय ।

देख, तृषाकुल मानवता को,
प्रेम – पयोनिधि छलकाया ।
तारे अम्बर की कविता हैं,
अवनि -- काव्य हो तुम जाया !!

जब -- जब नारी उर से छलके
मधुरस पुण्य मृदुलत्ता का ।
निखिल प्रकृति में तत्व न मिलता,
इससे अधिक मधुरता का ।

नारी तो है मुक्ति -- मंजरी,
भ्रमर मिला यदि ममता का;
भव - सागर भी मधुमय होकर,
पद -- रज लेगा नरता का ।

यही सोम -- रस सोम पान कर,
धरा -- व्योम को महकाया !
तारे अम्बर की कविता हैं,
अवनि -- काव्य हो तुम, जाया !!

दोनों के सहकार बिना, भव—
मंगल कब हो सकता है ?
भंग हुये निज एक पंख से,
कभी विहग उड़ सकता है ?

जीवन के सुरभित उपवन में,
नारी का मधुवन पलता ।
सुधा -- सिंधु में कैसे नर का,
जगती -- तल यौवन जलता ।

यौवन के अमरत्व -- सिंधु में;
नर ने है धोखा खाया !
तारे अम्बर की कविता हैं,
अवनि --काव्य हो तुम, जाया !!

स्रष्टा की है अमिट लेखनी,
दिग--दिगन्त का प्रातः--गान;
जगा रही है प्रणय--उषा को,
कर जीवन-भ्रम-तम अवसान ।

स्वजन, समाज और संतति -- हित,
राग -- त्याग वह बरसाती ;
विश्व -- जीव पर करे दया,—
वह महा प्रकृति तव कहलाती ।

किरणवती के पातीव्रत नें,
मुगल -- राज - मद विदलाया !
तारे अम्बर की कविता हैं,
अवनि -- काव्य हो तुम, जाया !!

चाह लूटने की नर करता,
पर, नारी लुट जाने की;
नारी -- चाह डूबने की, नर—
जीवन -- सरि तर जाने की ।

कैसे भूलूं सुकृति तुम्हारी,
जीवन -- ज्योति जलाने की ।
हे, मानस की राजमराली !—
सुधा -- चषक छलकाने की ।

जगत -- अम्बिके ! ममता -- मयि माँ,
मैंने पुलक गींत गाया !
तारे अम्बर की कविता हैं,
अवनि -- काव्य हो तुम, जाया !!

नर

मनु -- वंशज जगती तल जन्मे,
मानो विस्थापित ईश्वर !
मुकुल भले उत्सर्जित होता,
देही पूर्ण शरद -- शशि -- कर !!

अहा ! मोह की गंधवती पर,
प्राप्त बहुत है वस्तु विलक्षण ।
इन सब से ही विचित्र नर है,
करे मनुज 'मनु' का ही भक्षण ।

वसुधा पर अज्ञान -- शर्वरी,
अभि -- क्षण करती तम का अर्पण ।
घोर निशा से व्याप्त विश्व में,
ब्रह्म -- ज्ञान ही मन का दर्पण ।

आत्म -- ज्ञान ही पूर्ण लक्ष्य है,
प्राणप्रभा कृत्य – किंकर ।
मुकुल भले उत्सर्जित होता,
देही पूर्ण शरद – शशि -- कर !!

ज्यों -- ज्यों जरा ग्रसित करती है,
अंतक से ही होता स्तम्भित ।
हृदयंतर के छाया – गृह में,
जीवन -- श्रद्धा करे समर्पित ।

विगत काल गत्वर लगता है,
मन -- विम्वित स्वकृत्य लख अर्जित;
शैय्या पर निर्वेद -- कर्म का,
नश्वर विग्रह करे विसर्जित ।

केवल निद्रा, विस्मृति मृति है,
व्यथित विश्व में निश्चय अभिसर !
मुकुल भले उत्सर्जित होता,
देही पूर्ण शरद – शशि – कर !!

तीन रूप कर्तव्य – पंथ पर,
उत्तम, मध्यम और अधम नर ।
जीवन मृगतृष्णा – सा भासित,
क्लेश – वाहिनी वसुंधरा पर ।

अवरोधों के सागर तट को,
निकृष्ट दूर से नमन करे ।
लहरों को छूकर मध्यम नर,
दुःखावर्त्त से गमन करे ।

पार करे विक्षुब्ध सिंधु भी,
अहा ! धन्य जो उत्तम नर ।
मुकुल भले उत्सर्जित होता,
देही पूर्ण शरद – शशि – कर !!

मानव का दानव बन जाना,
जीवन में है उसकी हार ।
किंतु, 'महामानव' में बदले,
मानवता होती साकार ।

जीवन गति करती छाया – सी,
अन्तकाल है ज्योति अपार ।
स्वर्ण-कुंजिका यही मृत्यु है,
खोले नित्य अमरता-द्वार ।

प्राण – प्रभा के बंद द्वार, नर—
मादक मुरली धरे अधर ।
मुकुल भले उत्सर्जित होता,
देही पूर्ण शरद – शशि – कर !!

किसी मनुज को पापी कहना,
अतिशय ही यह पापाचार ।
जो निर्वेष्ट्य है 'मनु का अंचल',
स्वाहा हो कर बनता क्षार ।

मानवता – परिधान – भस्म है —
महा प्रलय का अंगीकार ।
समाधिस्थ धरणी प्रति–कण – कण,
कुम्भी – नद बनता संसार ।

भ्रांत, क्लान्त हो मत्त मयूरी,
पीती उषः काल : रवि – कर ।
मुकुल भलें उत्सर्जित होता,
देही पूर्ण शरद – शशि – कर !!

पूर्ण ग्रंथ स्वयमेव मनुज है,
करता निज मन से उच्चारण;
सागर की लहरों में रह कर,
तृष्णा का यह कैसा कारण ।

महा जलधि मानव -- अंतस्तल,
ज्ञान – चक्षु से करता पारण ।
या कि सिंधु में गोता खायें,
करता बुद्धि – रत्न को धारण ।

मृगरोचन से विह्वल हो कर,
मृग ढूंढ़े हृद में रख कर ।
मुकुल भले उत्सर्जित होता,
देही पूर्ण शरद – शशि – कर ॥

धरती पर अपवाद मनुज है,
आँसू लें वसुधा पर आता ।
करता पान विगर्हण जग का,
ले कर मात्र निराशा जाता ।

अश्म -- अश्म से घर्षित हो तो,
घर्षण अनल -- कणों का दाता ।
दीप्तिमान् इस चिनगी के सम,
जीवों के जीवन का नाता ।

हुई ज्योति यह शमित कहीं तो,
जाता है तम -- तोम प्रसर !
मुकुल भले उत्सर्जित होता,
देही पूर्ण शरद -- शशि कर !!

नर जीवन का गरल पान कर
ज्ञान – सुधा – पायी बनता है।
शासन से ताड़ित होने पर,
द्रोहानल -- दायी बनता है।

हुआ उपेक्षित स्वजनों से तो,
क्षण में बीज -- तत्व है बनता।
कहीं कामिनी गर्हित करती,
मन में तव वैराग्य झलकता।

स्वप्रकाश से जो प्रकाशमय,
वन्दनीय वह : ज्यों दिनकर !
मुकुल भले उत्सर्जित होता,
देही पूर्ण शरद -- शशि – कर !!

अश्रु - हास के बीच मनुज नित,
दोलक - सम दोलन करता है।
दोलन में शैथिल्य हुआ तो,
शव - सी फिर उसकी जड़ता है।

जन्म - जन्म भव का यह बंधन,
पल - पल अनुरंजन भरता है।
छल कर मानवता को पाकर,
कल - कल - कल - कल पर मरता है।

फिर निशान्त की शान्त लहर में,
जीता वह किरीट - विषधर !
मुकुल भले उत्सर्जित होता,
देही पूर्ण शरद - शशि - कर !!

जीवन - पट को नयन पटल पर,
एक पलक उन्मुक्त देख लो।
पचरंगी पटरानी तन को,
एक झलक संयुक्त देख लो ॥

अंतरिक्ष कें शान्ति – कुंज में,
कल्प – द्रव्य को लुप्त देख लो !
निशा खोजती प्रभा – दीप ले,
अवनी – अम्बर सुप्त देख लो !!

कहाँ खो गया जाग्रत दीपक ?
अश्रु – नेह – धारा पी कर !
मुकुल भले उत्सर्जित होता,
देही पूर्ण शरद – शशि कर !!

काल

समय, अतलतम रत्नाकर है,
जो डूबा : मोती पाता है !
सर्व - श्रेष्ठ शिक्षक है जग का,
वैभव को यति का दाता है !!

जो नर इसे उपेक्षित करता,
करे उसी का यह अवसान।
करता स्वागत उद्योगी का,
जीवन का हर स्वर्ण - विहान।

यह सुविशिष्ठ कसौटी का क्षण,
खरे स्वर्ण का होता ज्ञान।
मनुज नहीं बलशाली होता,
स्वयं समय होता बलवान्।

इस अमूल्य गतिशील समय से,
मानव का अविरल नाता है !
सर्व - श्रेष्ठ शिक्षक है जग का,
वैभव को यति का दाता है !!

स्वर्णिम कण अनमोल प्रहर का,
गुम्फित करे अगर नर हार।
अग-जग को जगमग कर देगा,
जगती-तल का वंदनवार।

यह शुचि–शुभ्र, विमल गंगाजल,
बहती निर्मल पावन धार।
सेवन करे अगर नर इसका,
सहज तरे भव-सिंधु अपार।

नियति-पटल के दुर्दिन पथ पर,
मानव-मेघ बरस जाता है!
सर्व-श्रेष्ठ शिक्षक है जग का,
वैभव को यति का दाता है!!

अमित वर्ष भी इस अतीत के,
लगते जैसे कल के गान।
एक विपल मन मनन करे तो,
हो जाता वर्षों का ध्यान।

वह्नि-वृष्टि यदि नभ करता हो,
गिरता हो या हिम-पाषाण।
तजो नहीं कर्तव्य-मार्ग को,
निश्चय समय करे कल्याण।

आदि-अन्त पीड़ा-प्रमोद का,
यही युगों का निर्माता है!
सर्व श्रेष्ठ शिक्षक है जग का,
वैभव को यति का दाता है!!

युग - युगान्त तक लग जाते हैं,
भवन मनोहर बनवाने में।
किंतु, बहुत है पलक झपकना,
उसको रज - कण बनजाने में।

नयन - पटल है अभी गिरा जो—
दुष्करता उसको पाने में;
मृदुल मिलन की मधुर घड़ी में,
ईश्वर मिलता अनजाने में!

साधक की साधना सिद्ध कर,
तपः श्रेय से मढ़वाता है!
सर्व-श्रेष्ठ शिक्षक है जग का,
वैभव को यति का दाता है!!

समय नहीं है दास किसी का,
युग - युग का निर्मल आभास।
यम तक भी इसके किंकर हैं,
परम् ब्रह्म का यह अधिवास।

भाग्योदय के रंगमंच पर,
नियति-नटी का पद - विन्यास।
जीवन के कामना - कुंज में,
यह बन जाता है मधु - मास।

यह शृंगार सुषमता का है,
स्वर्ग - सुधा का भी घाता हैं!
सर्व - श्रेष्ठ शिक्षक है जग का,
वैभव को यति का दाता है!!

अभी खिली सुकुमार कली जो,
उस पर मधु - गुंजन लाता है !
जीवन की प्यासी संध्या में,
बन सावन - घन छा जाता है।

मित्रों का परिधान पहन,
उपहार प्रकृति का यह लाता है।
इसे ग्रहण मानव न करे तो,
लौट, मौन - गति से जाता है।

अंशुमाल लेकर निशीश से,
मधुर सुधारस बरसाता है !
सर्व - श्रेष्ठ शिक्षक है जग का,
वैभव को यति का दाता है !!

ज्ञान दिया इसने गीता को,
कलि को तुलसी दास दिया है।
भव - सागर - मरु - थल में इसने,
मन को मृग की प्यास दिया है।

महाकाल विकराल काल में,
भास्कर - सा यह दिव्य प्रकाशी।
निशिकर को निशि - नाथ बनाता,
तम में तारों का विश्वासी।

अहो ! समय - सागर - तट पर भी,
'चंचल' प्यासा रह जाता है !
सर्व - श्रेष्ठ शिक्षक है जग का;
वैभव को यति का दाता है !!

दुःख

दुःख से न कभी हो दुखी मनुज,
यह दुख तो है आता – जाता !
शत्रु – मित्र का मंजु मुकुर दुख,
काया – छाया है झलकाता !!

जिसने पीड़ा कभी न देखी,
वह महान्‌तम दुख का मारा।
पंकज – कीचड़ सर्जित करता,
ऐसी वर्षा की है धारा।

जीवन – शशि के भ्रमण – पंथ पर,
यह कृष्ण – पक्ष का अँधियारा।
कृष्ण – पक्ष कें विना निखरता,
है भला कहाँ सुख का तारा।

देव – दूत बन कर मस्तक पर,
कंटक स्वर्ण – मुकुट चमकाता !
शत्रु – मित्र का मंजु मुकुर दुःख,
काया – छाया है झलकाता !!

धन – माला – झंझावत से ही,
नभ में इंद्र – चाप सजता है।
महा प्रलय की चिता – भस्म पर,
नवयुग का नूपुर बजता है।

केवल मोद – मनोरथ नर का,
कष्टों का आगर होता है।
शून्य ज्ञानता नर के मन की,
पीड़ा का सागर होता है।

अहा धन्य ! वह मनु का वंशज,
जो इसको है अंक लगाता !
शत्रु -- मित्र का मंजु मुकुर दुख,
काया -- छाया है झलकाता !!

प्रथम विश्व का व्यथित व्यक्ति,
वपुरा है, अश्रु बहानें वाला।
इससे भी क्लेशित वह मन, जो —
ऋण का भार उठानें वाला।

इन दोनों से भी वह पीड़ित,
अविरल रुज है जिसे सताता।
इन सब से दुखिया वह नर, जो—
दुष्चरिता वनिता है पाता।

दुख ही 'चंचल' सीप सुभग वह,
जीवन मोती है बन जाता !
शत्रु – मित्र का मंजु मुकुर दुख,
काया -- छाया है झलकाता !!

धर्म

कहीं जल रही चिता घाट पर,
कहीं राख ने शंकर पाया !
नृत्य -- नाटिका करें अक्षरी,
नन्दन वन धरती पर आया !!

कहीं मृत्यु के अंक लहरता,
विश्वासों का शैशव -- सागर।
आत्म -- द्वीप में दीप जल रहा,
श्रद्धा का उपकरण सजा कर।

कहीं वर्तिका शान्त -- क्लान्त हो,
अर्थी को फिर क्षार बना कर-
क्रीड़ा करती मन -- प्रदीप से,
शिशुता का सहचारी पा कर।

कहीं विहँसते शिशु अबोध से,
रोम -- रोम में व्यापी माया !
नृत्य -- नाटिका करें अक्षरी,
नन्दन वन धरती पर आया !!

कहीं पुष्प के राज -- भवन में,
कोमल कलियों की 'मुसकानें।
सजे द्वार शूलों के कितने,
फिर भी अलि भरता है तानें।

शूल -- सुमन कें कलुष -- कुंज में,
गुंजन करता अलि अज्ञानी।
उपवन में मकरंद घोल दे,
वनें मलयगिरि -- सा वरदानी।

शीतल होगी तन की तरुणी,
मधु जीवन की मधुमय छाया !
नृत्य -- नाटिका करें अक्षरी,
नन्दन वन धरती पर आया !!

रंगमच यह महा विश्व है।
वनता जीव जहाँ अभिनेता।
मनस् -- वृत्ति से प्रेरित रहता;
चिर काया परिवर्तन चेता।

भ्रमित दिशा है, उदित निशा है,
गाती काल रात्रि विज्ञाता।
प्रभा शून्य में गरल पी रही,
तरल चंद्रिका उज्ज्वल गाता ॥

जीवन मधुमय, मधुर गरल है,
प्रभा -- पुंज से अविरल नाता।
किंतु तरल है, बहुत सरल है,
विमल चंद्रिका उज्ज्वल गाता।

उर्मि -- उर्मि से कहे मूक वन,
'अरी' सखी ! क्यों कम्पित काया ?
नृत्य -- नाटिका करें अक्षरी,
नन्दन वन धरती पर आया !

हृदय -- पुरी चंद्रिका -- सदृश है,
कितनी शीतल, विमल, उदारा।
हाय! मोह -- बस, मन चकोर को,
क्यों प्रतीत होता अंगारा?

दान, तपस्या, क्षमा, अहिंसा,
सेवा, दया, त्याग की धारा।
मिले कहीं उपकार तरी, हो—
सहज सुलभ भव -- सिंधु - किनारा।

यही धर्म का प्रवर वर्म है,
अघ की अनी बने प्रति -- छाया।
नृत्य -- नाटिका करें अक्षरी,
नन्दन बन धरती पर आया!!

दान

शत -- शत गंगा का उद्गम -- थल,
शुचिता का यह मान सरोवर।
कोटि कल्प के अघ को हरता,
यही धर्म का कलित कलेवर।

दान, ज्ञान का सुंदर सरवर,
जहाँ जोंक का भी अभिनन्दन।
हृदय -- पयोधर की मछली बन,
करे मनोरथ छवि का सर्जन।

दान -- वीर देखो दधीचि को,—
अस्थि -- कलश को भी गमकाया!
नृत्य -- नाटिका करें अक्षरी,
नन्दन -- बन धरती पर आया!!

उपकार

मनुष्यता के उर -- रसाल पर,
कोयल की मधुरिम वानी है यह;
कर्म -- क्षेत्र के मरुथल में भी,
गंगा का निर्मल पानी है यह।

ऊषा के स्यंदन से उतरी,
ज्ञान -- सूर्य की रानी है यह।
मोक्ष -- कुंज की आम्र -- मंजरी,
शिव की सत्य कहानी है यह।

यह गोकुल का गोवर्द्धन है,—
जिसे इंद्र ने शीश नवाया !
नृत्य -- नाटिका करें अक्षरी,
नन्दन वन धरती पर आया !!

यह तो शिव का नील-कण्ठ है,
पी जाता जो कलश हलाहल।
मन -- प्रदीप -- वर्तिका जलाकर,
देता ज्ञान -- चक्षु का काजल।

कोटि - सूर्य दीपक बन जाते,
भाल कहीं सत्कृति का झलका।
बूंद - बूंद से मोती बनता,
हृदय - सिंधु यदि इसका छलका।

द्रुपद - सुता की व्रीड़ा रख कर,
इसने शत - शत चीर बढ़ाया।
नृत्य - नाटिका करें अक्षरी,
नन्दन वन धरती पर आया।

क्षमा

क्षमा सत्य है, क्षमा योग है,
क्षमा शौर्य की निर्मल नलिनी।
क्षमा धर्म के उर की माला,
क्षमा विष्णु के हृद् की धमनी।

प्रभा-रश्मि की चीर ओढ़ कर,
लेटी जहाँ क्षमा की रानी।
स्वर्ग पलक-पाँवड़े बिछा कर,
करता रहता नित अगवानी।

ऋषियों की बेटी यह जिसने,—
निशिचर-कुल का नाश कराया!
नृत्य-नाटिका करें अक्षरी,
नन्दन वन धरती पर आया!!

क्षमा-वीन से घायल होकर,
व्यालिनि भी मधु रस बरसाती।
निशा-नर्तकी काजल बन कर,
आँखों में आकर लग जाती।

गंधराज के अंक शयन कर,
व्याल सर्वदा गरल बरसता।
देखो, चंदन की शीतलता।
फिर भी उसको शीतल करता।

क्षमाशील के हृदय-कुंज में,
नियति-नटी का रूप समाया!
नृत्य-नाटिका करें अक्षरी,
नन्दन वन धरती पर आया!!

दया

हृदय-शून्य के छाया-गृह में,
व्यापित जहाँ अँधेरा रहता।
दया-सोम के अंशुमाल का,
वहाँ सदा ही फेरा लगता।

यह तो निर्मल, शीतल, उपवन;
मधु का जहाँ वसेरा रहता।
जहाँ वरसती रस की धारा,
तम भी जहाँ सवेरा लगता।

अमर कीरीटिनि, हृदय-हारिणी,
स्वर्णमयी, ज्योतिर्मयि जाया।
नृत्य-नाटिका करें अक्षरी,
नन्दन वन धरतीं पर आया॥

विद्या-वारिधि होने पर भी,
यदि नर नृशंसता दर्शाता।
ज्ञान-सिंधु का शीतल सागर,
शुष्क, तप्त मरु-थल वन जाता।

दयावन्त के प्रभा-पुरस्सर,
शत-शत-चन्द्र मलिन हो जाते।
नत मस्तक होकर दिनेश भी,
किरणों से मधुरस वरसाते।

दया धर्म की बड़ी वहन है,
जिसने धर्म धरा पर लाया।
नृत्य-नाटिका करें अक्षरी,
नन्दन वन धरती पर आया॥

त्याग

त्याग सुनहली केशर-क्यारी,
कल्प-कल्प तक सदा गमकती।
महाकराली काल रात्रि भी,
त्यांग-वीर से शंकित रहती।

त्याग, स्वर्ग की जन्म-भूमि है,
त्याग मोक्ष की मंजु मंजरी।
त्याग मुक्ति का मुख्य द्वार है,
त्याग शान्ति की अमर वल्लरी।

त्याग तपस्या की विभुति है,
अहा! अंक में जो भर पाया!
नृत्य-नाटिका करें अक्षरी,
नन्दन वन धरती पर आया!!

त्याग, कर्म के तप्त मार्ग पर,
क्लान्त पथिक की छटा मयूरी;
कर्म-फलों का त्याग, त्याग;—
निष्काम कर्म स्वर्गिक कस्तूरी।

यह तो शिव का केश अनोखा,
सुरसरि की धारा उलझाता।
कहाँ भगीरथ, कहाँ कल्पगा,
बूँद-बूँद मधुरस बन जाता।

गरल-वृक्ष भी मधुरस झरता,
अगर त्याग का पवन वहाया।
नृत्य-नाटिका करें अक्षरी,
नन्दन वन धरती पर आया॥

अहिंसा

भव-सागर कें अमर द्वीप में,
महा प्रकृति का सुंदर उपवन ।
नियति-नटी की तुम प्रिय संतति,
प्रिय है तुम को मधुमय जीवन ।

पीते हो मकरंद-घोल तुम,
सुरभित, मधुरित होता मधुवन ।
क्रीड़ा करते हो सुअंक में,—
और विहँसता उसका यौवन ।—

—शृंगारों से राजतिलक कर,
जिसने तेरा रूप सजाया ।
नृत्य-नाटिका करें अक्षरी,
नन्दन वन धरती पर आया ।—

—चाह रहे हो भस्मित करना,
तुम उसका शृंगार-महल कल ।
जैसे चींटी सागर थाहे,
जिसे बहुत हैं एक विन्दु जल ।

जिस प्राणी के प्रजनन का,
जब मानव ने अधिकार न पाया ।
उसे निकंदन करने को फिर—
क्यों उसने हँथियार उठाया ।

हिंसा की गणिका से तुमने,
रे, मनु-वंशज ! व्याह रचाया !
नृत्य-नाटिका करें अक्षरी,
नन्दन वन धरती पर आया !!

अगर अहिंसा के कष पर, नर,
स्वर्ण-सदृश निज रूप दिखाता।
गुह्य ग्रंथ का पृष्ठ खोल कर,
स्वयं सुचित्रों से सज जाता।

भव-सागर के अमृत-खण्ड पर,
पुष्प, अहिंसा का यदि गमके।
अग-जग के तम के माथे पर,
स्वयं विष्णु की आभा दमके।

प्राण-प्रभा के वन्द द्वार पर,
सुधा-कलश जिसनें छलकाया !
नृत्य-नाटिका करें अक्षरी,
नन्दन वन धरती पर आया !!

चरित्र

पीड़ा का अम्बार लगा हो,
चरित्वान को लगता जैसे।
कष्टों की डगमग नौकायें,
खेल रही हों गंगा जल से।

पंकज वन आचार पंक में,
व्यापित होते विमल कमल से।
और धर्म का संकट पीकर,
शीतल होते कण्ठ गरल से।

भ्रमित मनुज को मरुथल में भी,
सदा निराला पंथ दिखाया !
नृत्य - नाटिका करें अक्षरी,
नन्दन वन धरती पर आया !!

सदाचरण शुचि श्वेत पत्र-सा,
जब भी कभी सत्व निज खोता।
कोई कोटि यत्न कर जाये,
पुनरपि नहीं पूर्ववत् होता।

दान, ज्ञान, तप, तीर्थ, अहिंसा,
यज्ञ आदि की सभी क्रियायें।
चरण-धूलि लेने को तरसें,
धर्म-लोक की सभी कलायें।

यही विष्णु का अलंकरण है,
श्रेय मान जग ने अपनाया!
नृत्य-नाटिका करें अक्षरी,
नन्दन वन धरती पर आया!!

सेवा

सेवा पर ही विश्व टिका है,
सेवा ही मानव की महिमा।
सेवा में ब्रह्माण्ड पल्लवित,
सेवा जग की लघिमा-गरिमा।

मानव-सेवा शास्त्र-उक्ति है,
मानव-सेवा परम धर्म है।
ग्रंथों का निष्कर्ष यही है,
जग-सत्ता का यही मर्म है।

यही धर्म का शुभ्र मुकुट है,
सुभग स्वर्ग का रत्न जड़ाया!
नृत्य-नाटिका करें अक्षरी,
नन्दन वन धरती पर आया!!

दर्शन के ताने-वाने में,
इसकी ही प्रतिमूर्ति झलकती।
अखिल विश्व के तृषित अधर पर,
ऋतम्भरा प्रज्ञा-सी झरती।

जग-सत्ता के ज्योति-कलश] में,
सेवा निर्मल तरल तेल है।
जन्म-जन्म भव का यह बंधन,—
सेवी नर का मात्र खेल है।

इसी धर्म से जगत सेव्य ने,
जगती में निज रूप सजाया!
नृत्य-नाटिका करें अक्षरी,
नन्दन वन धरती पर आया!!

सेवा मन को निर्मल करती,
पापी नर भी बनता पावन।
भले आग अम्बर से बरसे,
सेवक को लगता है सावन।

सेवा के सुअंक में विहरें,
शत-शत विष्णु, शेषधर न्यारे।
सेवा के निर्मल सपूत का,
नृशंसता भी काजर पारे।

सेवा की गंगा-लहरी ने,
जन्म-जन्म का पाप नसाया!
नृत्य-नाटिका करें अक्षरी,
नन्दन वन धरती पर आया!!

पाप

अहा ! पाप भी कितना सुन्दर,
हृदय - शून्य का सूर्य जगाता !
दिव्य दुर्ग का द्वार खोल कर,
प्रभा - कुंज में रास रचाता !!

किसी मनुज को पापी कहना,
अग - जग का सर्वोपरि पाप।
पाप - कृती बन कौन नहीं जो,
ग्लानि - ग्रस्त करता अनुताप।

दृष्टिकोण - वैषम्य मनुज का,
अभिहित होता यद्यपि पाप।
मुक्त कण्ठ की मृदुल पिपासा,
जीवन का स्वर्णिम अभिशाप।

हृदय - कलुष के पीत वसन पर,
मरकत की आभा चमकाता !
दिव्य दुर्ग का द्वार खोल कर,
प्रभा - कुंज में रास रचाता !!

कल्प - वृक्ष भी अभिवन्दित हो,
चाहे झरे त्रिविध परिताप।
पिये गरल पर मधुरस छलके,
यही मनुजता का परिमाप।

हे, उपवन ! मकरंद पिलाओ,
मत दो अलि को तुम संताप।
करो घृणा अघ से, न अघी से,
तुम भी तो न स्वयं निष्पाप।

यही धर्म का चरम लक्ष्य है,
तिमिर-कुंज को भी महकाता !
दिव्य दुर्ग का द्वार खोल कर,
प्रभा-कुंज में रास रचता !!

जीवन-पथ के पग-पग पर नर,
दण्ड-बीज का कर विस्तार।
दिन-प्रति दिन यम गेह सिधारे,
दुःख-शूल से जीवन हार।

दुष्चेष्टित का शैल लाद कर,
प्राण-तरी पर हो आसीन।
गुप्त दुरिष्ट मनुज को चुभता,
मृत्यु - काल-सुख - शैय्या लीन।

क्यों त्रिशंकु - सम मध्य गगन में,
चिदाभास को है लटकाता ?
दिव्य दुर्ग का द्वार खोल कर,
प्रभा–कुंज में रास रचाता !!

दुर्व्यष्टित से विस्तृत होता,
कलुषित मन का पापाचार ।
जैसे दहके अग्नि-पुंज को,
नहीं शमित करता अंगार ।

मन के जलते दुरित-दीप से,
सदा मिला दुष्कृत का क्षार ।
जीवन की तरणी बह जाती,
मिला कल्क का यदि पतवार ।

सुकृत-पोत को छिद्र युक्त कर,
वितल-क्रोड़ तक यह ले जाता !
दिव्य दुर्ग का द्वार खोल कर,
प्रभा-कुंज में रास रचाता !!

लज्जा का परिपंथी बनता,
हृदय खोल यदि करे दुरिष्ट ।
गुप्त कल्क का कलश पिये तो,
भीरु बने मनु-वंशज शिष्ट ।

देही की गरिमा से लिपटे,
कलुषित मन की इषा निकृष्ट ।
तामस-मय भविष्य बन जाता,
दृष्ट पंथ भी बने अदृष्ट ।

'असतो माँ सद्गमय' प्रचेता,—
पंथ सदा पंकिल हो जाता !
दिव्य दुर्ग का द्वार खोल कर,
प्रभा-कुंज में रास रचाता !!

वचन-कलुष के शाश्वत् वंशज,
अनृत, कुनिंदा कंटक-बोल ।
प्राण-घात, व्यभिचार, दस्युपन,
शारीरिक कल्मष के घोल ।

पर-धन-ईप्सा, हिंसा, रिपुता,
अंतस्-अघ के कलुषित चोल ।
कल्क प्रभा का गुप्त भेद है,
हृदय-पटल को देखो खोल !

सूक्ष्म देह के सजे द्वार पर,
कालकूट - वल्लरी लगाता !
दिव्य दुर्ग का द्वार खोल कर,
प्रभा-कुंज में रास रचाता !!

प्रथम चरण आचार कल्क का,
षट्-प्रश्नों का करे प्रमोद ।
पुनः सहजतम हो जाता है,
जैसे अम्बु कीच की गोद ।

बन जाती जब वृत्ति पाप की,
धार्ष्ट्र्य – ज्वाल उरअन्तर पाल ।
भस्मित होता हृदय – हीर, वह—
अनुतापी हो देखे काल

अघ करते – करते मानव का.
योंही फिर स्वभाव वन जाता !
दिव्य दुर्ग का द्वार खोलकर,
प्रभा – कुंज में रास रचाता !!

अति कलुषित कण -- कण अदृष्ट का
करता चिर कल्मष शृंगार
मन -- प्रवृत्ति के वक्षः स्थल पर,
करता रहता नित्य विहार।

तथ्य यही अवितथ्य नहीं है,
पातक निश्छलता का बंध
अनुतापित नर शिक्षा ले तो,—
पाये पारिजात -- सा गंध।

कोटि कल्प का कलुष मेघ भी,
सुधा जलद बन कर छा जाता।
दिव्य दुर्ग का द्वार खोल कर,
प्रभा -- कुंज में रास रचाता॥

अमर कोट का निरूपम प्रहरी,
प्रलय -- वात में मलय -- समीर।
मानवता की शुष्क भूमि पर
हृदय -- सिंधु का निर्मल नीर।

एक बूंद भी पान किया तो
महक उठेगा स्वयं शरीर।
मनुष्यता के मर्मस्थल पर,
हृदय -- दुर्ग का यह प्रचीर।

धन्य -- धन्य ! हे, पाप देवता !
'चंचल' भाल स्वयं झुकजाता !
दिव्य दुर्ग का द्वार खोल तूं,
प्रभा -- कुंज में रास रचाता !!

क्रोध

मानव ! क्रोध करो मत मन में,
यह पल भर का पागलपन है !
जड़ता शैशव, हिंसा यौवन—
और जरा अनुताप सघन है !!

जब तक इसका शासन चलता,
प्रज्ञा का प्रकाश ढह जाता।
और मनुज के अन्तस्तल में,
केवल तम ही तम रह जाता।

क्रोध क्लेश के अन्तराल में,
सत्कृतियों की चिता जलाता।
भस्मित करके विमल चित्त को,
पथ पर भ्रम का व्यूह रचाता।

चित्त सुधा-मय उदित चंद्र, पर—
क्रोध कलंकित करता तन है !
जड़ता शैशव, हिंसा यौवन—
और जरा अनुताप सघन है !!

यह मानस के विस्तृत नभ में;
प्रलय - काल कें रवि-सा जलता।
हृदय - सिंधु की सुधा सोखकर,
सदा गरल की वर्षा करता।

इस भुजंग के फूत्कार से,
स्वयं भाग जाती धृति - मृदुता।
धारण करते ही मर ;जाता,
इस आयुध का चालन कर्ता।

पल भर में जो प्रलय मचा दे,
यह शिव का तीसरा नयन है!
जड़ता शैशव, हिंसा यौवन—
और जरा अनुताप सघन है!!

जीवन तरी डूब जाती है,
पाकर क्रोध - शिला अवरोधन।
प्रतिभट के विस्मरणों का नर,
करता नित्य स्वयं प्रतिशोधन।

हृदयांचल की मृदुस्थली पर,
क्रीड़ा करता अगर अमर्षण।
सरस्वती का वरद पुत्र भी,
करनें लगता जड़ता वर्षण।

क्रोध राहु बन मन - मयंक का,—
करता मलिन प्रफुल्ल वदन है!
जड़ता शैशव, हिंसा यौवन—
और जरा अनुताप सघन है!!

आदि — अंत मत्सर जड़ता का,
जड़ता से स्मृति का उद्भ्रामण ।
विस्मृति की उन्मत्त अवस्था,
प्रज्ञा का होता उत्क्रामण ।

च्युत होकर कर्तव्य - पंथ से,
मानव फिर विक्लान्त हो चले ।
लक्ष्य हीन, गति - हीन अन्त में,
सदा - सदा को शान्त हो चले ।

जीवित नर की अस्थि चबाता,
महा क्रोध का हिंसक श्वन् है !
जड़ता शैशव, हिंसा यौवन,
और जरा अनुताप सघन है !!

अखिल विश्व भासित हो सकता,
ज्ञान - दीप का एक स्पर्श पर ।
पर, प्रभुत्व करना दुष्कर है,
निज अन्तस्तल के अमर्ष पर ।

हृदयस्थल के कल्क वृक्ष की,
रोषणता की छाँह स्पर्श कर ।
कल्पान्तर से चला पथिक वह,—
भ्रमित हो रहा आज तमस पर । —

—मानवता की फुलवारी को,
कर देती यह निर्जन वन है !
जड़ता शैशव, हिंसा यौवन,—
और जरा अनुताप सघन है !!

रोषणता कलिकाल कराली,
क्रूर काल की कलुषित काया ।
घोर पाप की क्रूर व्यालिनी,
महाकाल की है यह जाया ।

रोषणता काली की जिह्वा,
प्रलय - तिमिर की मुखारित माया ।
ममता के मधुरिम दर्पण में,
हृदय - विम्व की जलती छाया ।

विमल नम्रता के आनन पर,
हिंसा का नव अवगुण्ठन है !
जड़ता शैशव, हिंसा यौवन,—
और जरा अनुताप सघन है !!

सरल हृदय की रोषणता तो,
हृद् - सागर की मादक लहरी ।
पल - भर में मिट जाया करती,
जैसे जल पर रेखा उभरी ।

रोषणता निर्मल हो जाती,
पा कर विमल हृदय की नगरी ।
श्रावण की कोई लघु सरिता,
जैसे गंगाजल में उतरी ।

कंचन वनता पारस पा कर,
लोहे का भी कलुषित मन है !
जड़ता शैशव, हिंसा यौवन —
और जरा अनुताप सघन है !!

मंथरा

नियति पटल के सिंहासन पर,
कौन शम्बली सज -- धज चढ़ती ?
अक्ष मूँद प्रच्छन्न वेष में,
निशि -- वासर अधिशासन करती।

निराकार, आधार गगन तक,
शासन की भैरवी प्रणाली;—
अपनाती निस्सीम व्योम तक,
महा मोह की मर्म निराली !

फन अबोध मन पर भी रखती,
महा काल की क्रूर व्यालिनी।
करती व्यग्र सरल को निश् - दिन,
विकट वेष में यह करालिनी।

मनुष्यता के तृषित चित्त को,
मृग – मरीचिका – सी यह छलती !
अक्ष मूँद प्रच्छन्न वेष में,
निशि – वासर अधिशासन करती।

वन कर घन की मोहक माला,
कभी दहकती उष्ण ताप – सी।
यद्यपि उर में विद्युत – ज्वाला,
नभ में उगती इंद्र – चाँप - सी।

नैतिकता के सुधा - सिंधु को,
त्वरित् उड़ाती उष्म वाष्प - सी।
मनोवृत्ति पर चित्रित करती,
विषय - वासना अमिट छाप सी।

उर - विधु की कमनीय किरण भी,
न्याय - अवनि पर अनल वरसती !
अक्ष मूँद प्रच्छन्न वेष में,
निशि - वासर अधिशासन करती !!

भ्रमरी वन कर छलती रहती,
मनुष्यता की विकच कली को।
वगुली वन कर निगला करती,
हृदय - सरोवर की मछली को।

लक्ष्य - मार्ग पर अगणित पथ वन,
विस्मित करती मन - पुतली को।
व्रह्म - जीव के वीच पटल वन,
निर्मित करती भ्रमस्थली को।

मृगमद से उद्विग्न मनस्—
कल्पना हिरण-सा वन-वन फिरती !
अक्ष मूँद प्रच्छन्न वेष में,
निशि - वासर अधिशासन करती !!

सत्युग की स्वर्णिम धरती पर,
प्रसरी इसकी कलुषित छाया ।
किंतु, धर्म के दिव्य तेज से,
क्षार हो गई इसकी काया ।

त्रेतायुग के प्रथम चरण में,
पुनः विखेरी अपनी माया ।
दशरथ के मरकत - आँगन में,
ज्येष्ठ पुत्र को लक्ष्य वनाया ।

होना था अभिषेक राम का,
पर, प्रवृत्ति निज कैसे तजती !
अक्षमूँद प्रच्छन्न वेष में,
निशि - वासर अधिशासन करती !!

चाह रही थी धूल चटाना,
त्रेता की शृंगार - छटा को ।
ऊष्ण दाह देती थी पल - पल,
महा प्रलय की अमिट घटा को ।

पर, यह कैसे था सब सम्भव ?
मिली सीख सच्ची कुलटा को ।
जहाँ स्वयं श्रीराम पधारे,
क्लेश कहाँ फिर वसुंधरा को ?

आत्मदाह से काय क्षार कर,
त्रेता से द्वापर को चलती !
अक्षमूंद प्रच्छन्न वेष में,
निशि-वासर अधिशासन करती !!

महादेवि देवकी-गर्भ से—
करुणा-सागर श्री पीताम्बर ।
प्रकट हुये शुचि-शुभ मुहूर्त्त में,
द्वापर की रस-मयी धरापर ।

यादव-युग के रजत-काल में,
पुनः सुनहला अवसर पा कर ।
विषय-वेलि को सींचा इसने,
उर-घन से विष-जल बरसा कर,

द्वापर-युग की विमल उषा पर,
मलिन इषा की निशा उगलती !
अक्षमूंद प्रच्छन्न वेष में,
निशि-वासर अधिशासन करती !!

प्रसरी इसकी माया परितः,
उषा सिसकने लगी गगन से;—
और व्योम से निशानाथ भी,—
गरल उगलने लगे किरन से ।

मायापति से कौतुक करना,
चाह रही थी उन्मादन से ।
जैसे कोई दीपक चाहे,
खेल खेलना प्रबल पवन से ।

उधर कृष्ण के रोम-रोम से,
अगणित रवि कीं ज्योति झलकती !
अक्षमूँद प्रच्छन्न वेष में,
निशि-वासर अधिशासन करती !!

मोहनिशा हो क्षार वह चली,
ले गीता की मधुरस धारा ।
सागर में डूबी तटनी को,
भला कहाँ-कब मिला किनारा ?

विषयी प्राणी मर कर पाता,
कलुष-वृत्ति से कब छुटकारा ?
लगा खोजने चेतन उसका,
निशा-खोज में जैसे तारा !

द्वापर के अवसान-काल पर,
ले माया कलिकाल उतरती !
अक्षमूँद प्रच्छन्न वेष में,
निशि-वासर अधिशासन करती !!

धर्मराज के धाम गई यह,
हुई प्रणत : साष्टांग दंडवत् ।
बिखरा-बिखरा केश दिखाया,
देखा ज्योतित नयन कमलवत् ।

अश्रु प्रपूरित नयन देख कर,
बोले धर्मराज, मर्माहत :
'कौन कहाँ से आई हो तुम,—
परिचय अपना दो अभ्यागत ?

हृदय खोल कर बोली सत्वर,
आदर युत अभिवादन करती !"
अक्ष मूँद प्रच्छन्न वेश में,
निशि–वासर अधिशासन करती !!

"सतयुग से ही मारी-मारी,
व्यौमोहित मैं व्यग्र निगिचरी ।
मैं ही माया, मैं ही छाया,
दिन मुख, निशिमुख और शर्वरी,

जलचर, थलचर, नभ,—चेतन की,
विषय – वासना – अमर वल्लरी ।
प्रिय कलियुग के वक्षस्थल पर,
नाथ ! वनूँ मैं मर्म - मंजरी

पाहिमाम् ! हे, शिव-मही-धर,
कलियुग का संचालन करती !"
अक्ष मूँद प्रच्छन्न वेष में,
निशि-वासर अधिशासन करती !!

वचन–वद्ध हो धर्मराज ने,
बना उसे कलियुग-अधिवासी ।
चिंतन करने लगे हृदय से,
तन मूर्छित, मन हुआ उदासी ।

माया की निर्दयता छलकी,
किया प्रेम से श्वासोच्छ्वासन ।
भ्रमित हो गया कलियुग पथ पर,
और किया इसने कल विहसन ।

दिग्वधुओं के विस्मित मन पर,
तक्षक का संचारण करती !
अक्षमूँद प्रच्छन्न वेष में,
निशि-वासर अधिशासन करती !!

अगणित दारक जन्म उठे फिर,
इस व्याली के मलिन अंक से;—
और सुताएँ हुईं सर्जिता,
व्योमोहिनि के कलुष डंक से,

क्रीड़ा करती ये दुहिताएँ,
जीवन के एषणा-पंक से;—
और उतारें नित्य कालिमा,
कलियुग में शशि के कलंक से ।

जीवन के सौरभ-निकुंज में,
ईति-मेघ प्रस्तारण करती !
अक्षमूँद प्रच्छन्न वेष में,
निशि-वासर अधिशासन करती !!

असत् और अविवेक धरा पर,
कुटिल काल के उपनिवेश में;
घूम रहा मद उन्मादक बन,
बलात्कार के विकट वेष में ।

कलह, कपट, कटु बोल, दस्युपन,
काम, क्रोध, छल, दम्भ, द्वेष में ।
खेल रहे कुलटा के वंशज,
वसुंधरा के सुपरिवेश में ।

दर्प, दाह, आतंक-वृत्ति लें,
धृष्ट, स्वार्थ परिपालन करती !
अक्षमूँद प्रच्छन्न वेष में,
निशि-वासर अधिशासन करती !!

पर-धन-ईप्सा, हिंसा, रिपुता,
कृतघ्नता, भीरुता, भर्त्सना !
तिरस्कृता की ये दुहिताएं,
नृशंसता, गर्हणा, ताड़ना !!

नोचरहीं मन की फुलवारी,
अशुद्धता, व्यग्रता, वासना !
क्रीड़ा करती पंकिल जल में,
विलासिता की तृषित भावना !!

मनस्-गगन की मेघ तड़ित बन,
हृदय-वितल को नित्य वेधती !
अक्षमूँद प्रच्छन्न वेष में,
निशि-वासर अधिशासन करती !!

उपसंहार

मैं क्यों जीवन-व्यापार लिखूँ !
मैं क्यों इसका आधार लिखूँ !
जब साम्य नहीं है गीतों में,
फिर प्रियतम को क्या प्यार लिखूँ !!

युग की गति का निर्माण कहाँ ?
है प्रच्छिल में भगवान कहाँ ?
अरुणाम्बर ओढ़ प्रतीची का,
है भास्कर का अवसान कहाँ ?

प्रज्ञप्ता के प्रतिविम्वों में,
है गीता का आख्यान कहाँ ?
प्रक्षिप्त हृदय की वेदी पर,
है पूजा का परिधान कहाँ ?

है अभ्रलिप्त मरु हुआ व्योम,
मैं क्यों इसका संसार लिखूँ ?
जब साम्य नहीं है गीतों मे,
फिर प्रियतम को क्या प्यार लिखूँ !!

प्रतिशः मुहूर्त प्रतिमानों में,
है प्रक्षोभण विश्राम कहाँ ?
पी रहा कलाकुल ब्रह्म आज,
चल रहा प्रबल संग्राम यहाँ ।

बहते प्रवात को भी करपुट,
ऐसा प्रभात निष्काम कहाँ ?
विवेंद करे जो कर्ममास,
वह ग्रीष्म-काल का घाम कहाँ ?

ऊषा की जलती किरणों से,
क्यों प्राची का शृंगार लिखूँ ?
जब साम्य नहीं है गीतों में,
फिर प्रियतम को क्या प्यार लिखूँ !!

जीवन की सरिता के सम्वल,
है कौन प्रचेता व्यवहर्ता ?
क्यों मौन पूज्य करता शीकर,—
वह कौन प्रणेता अवतरता ?

सागर से लेकर अम्बर तक,
वह कौन पृषत में रस भरता ?
शम्बर के कण का दर्पण बन,
सम्पूर्ण विश्व देखा करता ।

मैं श्रावण की मेचकता में,
क्यों कज्जल का व्यतिचार लिखूँ ?
जब साम्य नहीं है गीतों में,
फिर प्रियतम को क्या प्यार लिखूँ ?

तुमने ही व्यंगित व्यंजक मे,
मादकता को व्यवकीर्ण किया ।
पावस से व्यवसित नभ चर मे,
व्यारोष कृष्ण अवकीर्ण किया ।

व्यापक है व्यान ब्रह्म तक जो,
बहु व्याजों से संकीर्ण किया ।
क्यों हरी गई रुक्मिणी कहाँ ?
क्यों व्याकृति नें व्याकीर्ण किया ?

क्यों माधव का शृंगार लिखूँ ?
क्यों उद्धव का अंगार लिखूँ ?
जब साम्य नहीं है गीतों में,
फिर प्रियतम को क्या प्यार लिखूँ !!

अब कहाँ विधुंतुद व्योम–वीच,
है कहाँ कल्पगा व्योम-केश ?
वह कौन प्राण है प्राणक में ?
निस्तार करे जो लव निमेष ।

पर्यटन कर रहा प्रतनु प्राण,
घर शरद पूर्ण-निशिकर-सुवेष ।
पीयूष बहाती है गंगा,
वह ब्रह्म-लता जो विबुध देश ।

प्रातः प्रवात की वेला में,
ओंकार : ब्रह्म-अवतार लिखूँ ?
जब साम्य नहीं है गीतों में,
फिर प्रियतम को क्या प्यार लिखूँ !!

निर्विषय, प्रभाश्री, निर्गवाक्ष,
निर्वृति, निर्व्रण, रे ! निराकार;
गंतशब्द निशापति निशि अशेष,
मानस - सागर - मंथनाहार ।

मानस - प्रदीप जब निर्व्यलीक,
होता व्यलीक तो तब क्यों प्रतीत ?
पी कर निशिथिनी यो निशीश,
विघटित निशान्त फिर क्यों अतीत ?

सागर-तल से ले व्योम तलक,
नर का मैं क्यों अधिकार लिखूँ ?
जब साम्य नहीं है गीतों में,
फिर प्रियतम को क्या प्यार लिखूँ !!
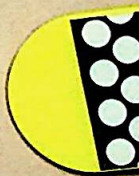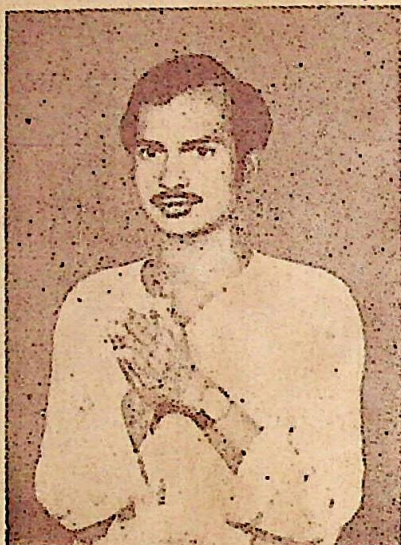
शिवप्रसाद वर्मा

'चंचल' जौनपुरी

जन्म—संवत् २००२ विक्रमी पौष शुक्ल पक्ष तृतीया

ग्राम—सिम्हुई, रामपुर—जौनपुर।

आवरण चित्र—

वेदप्रकाश मिश्र